भगत कबीर – सबद १४

जो जन परमिति परमनु जाना ॥

रागु गउड़ी, भगत कबीर, गुरु ग्रंथ साहिब, ३२५

जो जन परमिति परमनु जाना ॥
बातन ही बैकुंठ समाना ॥१॥
ना जाना बैकुंठ कहा ही ॥
जानु जानु सभि कहहि तहा ही ॥१॥ रहाउ ॥
कहन कहावन नह पतीअई है ॥
तउ मनु मानै जा ते हउमै जई है ॥२॥
जब लगु मनि बैकुंठ की आस ॥
तब लगु होइ नही चरन निवासु ॥३॥
कहु कबीर इह कहीऐ काहि ॥
साधसंगति बैकुंठै आहि ॥४॥१०॥

सार: आध्यात्मिक समझ की खोज में मनुष्य जो सीखता है जो जानता है और जो अनुभव करता है उसके बीच एक सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण अंतर होता है। कई लोग धर्मग्रंथों की शिक्षाओं और दूसरों की धारणाओं के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं लेकिन बिना अनुभव के यह खोज सतही रह सकती है, सिर्फ़ विश्वास या बाहरी प्रतिध्वनि तक सीमित। ऐसा ज्ञान प्रेरणादायक हो सकता है लेकिन इसमें परिवर्तन की शक्ति का अभाव होता है। जब मनुष्य स्वयं पर चिंतन करने के लिए अंतर्मुखी होता है और बाहरी संसार को भी देखता है तभी ज्ञान सार्थक होता है। तब तक यह अंतर्दृष्टियाँ आकर्षक हो सकती हैं लेकिन उनमें वास्तविक समझ का अभाव रहेगा, ठीक पानी पर चंद्रमा के प्रतिबिंब की तरह। सुंदर, किंतु स्वयं का वास्तविक प्रकाश नहीं।

जो जन परमिति परमनु जाना ॥
जो दूसरों के दृष्टिकोण के माध्यम से अज्ञेय और सर्वव्यापी जागरूकता की प्रकृति को समझने का दावा करते हैं वह उधार ली गई मान्यताओं पर निर्भर करते हैं। आत्मचिंतन से वंचित होते हैं।

बातन ही बैकुंठ समाना ॥१॥
केवल बातचीत के ज़रिए वह खुद को धोखा देते हैं यह मानकर कि वह ज्ञानोदय की अवस्था में लाक्षणिक स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। (१)

ना जाना बैकुंठ कहा ही ॥
मैं नहीं जानता यह तथाकथित स्वर्ग कहाँ है। यह भौगोलिक रूप से स्थित स्वर्ग के ग़लतफ़हमी भरे विचार को अस्वीकार करना है।

जानु जानु सभि कहहि तहा ही ॥१॥ रहाउ ॥
हर कोई अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, कहता है कि कि स्वर्ग कहाँ है, यह दावा करता है कि यह वहीं है जहाँ वह मानते हैं। यह ग़लतफ़हमी से भरा दावा इस पर ज़ोर देता है कि स्वर्ग, ज्ञानोदय की अवस्था, किसी स्थान, विश्वास, धर्म या रूप तक सीमित नहीं है। (१)(विराम)

कहन कहावन नह पतीअई है ॥
केवल बोलने और आध्यात्मिक कहलाने से विश्वास या संतुष्टि नहीं मिलती। यह प्रतिबिंब है कि उधार ली गई अवधारणाएँ जीवंत चेतना नहीं ला सकती।

तउ मनु मानै जा ते हउमै जई है ॥२॥
मन तभी स्वीकार करता है जब अहंकार भीतर से लुप्त हो जाता है। (२)

जब लगु मनि बैकुंठ की आस ॥
जब तक मन दुखों से मुक्त स्वर्ग की आशा करता है तब तक वह सतही भक्ति पर ज़ोर देता है, जो पुरस्कार की इच्छा से प्रेरित होता है।

तब लगु होइ नही चरन निवासु ॥३॥
तब तक मन विनम्रतापूर्वक भक्ति के प्रति समर्पण नहीं कर सकता जब तक अहंकार, भय और आशा का विसर्जन करने के लिए स्वयं को आधार प्रदान नही करता। (३)

कहु कबीर इह कहीऐ काहि ॥
कबीर कहते हैं कि मुझे यही कहना है।

साधसंगति बैकुंठै आहि ॥४॥१०॥
जागृत की संगति में मनुष्य वास्तव में स्वर्ग में प्रवेश करता है। यह इस बात का प्रतीक है कि स्वर्ग कोई गंतव्य नहीं है बल्कि यह चेतना की वह अवस्था है जिसके प्रति हम जागृत हो सकते हैं। (४)(१०)

तत्त्व: भगत कबीर स्वर्ग की अवधारणा को नए सिरे से परिभाषित करते हैं। इसे एक दूर के वादे से वर्तमान वास्तविकता में बदल देते हैं। सच्चा स्वर्ग वह शांति है जो हमें उन लोगों की संगति में मिलती है जिन्होंने अपने मन को शांत कर लिया है और अपने अहंकार को त्याग दिया है। यह मृत्यु के बाद के लिए आरक्षित कोई दिव्य स्थान नहीं है बल्कि एक ऐसी अवस्था है जहाँ चेतना जागृत होती है और अहंकार विलीन हो जाता है। जब हम स्वर्ग को एक पुरस्कार के रूप में प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तब हम अक्सर उसे वर्तमान में अनुभव करने का अवसर खो देते हैं जिससे मन कर्मकांडों, अहंकार और लालसा में फँसा रहता है। यह अवधारणा हमें काल्पनिक स्वर्ग को त्यागने और सृष्टि के सार में स्वयं को विलीन करके पृथ्वी पर स्वर्ग की खोज करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

सबद व्याख्या **विनइंदर कौर** और **अमरदीप सिंह**

Oneness In Diversity Research Foundation
वेबसाइट: OnenessInDiversity.com
ईमेल: onenessindiversityfoundation@gmail.com